शिक्षा नीति-2019 का मसौदा

अस्पष्टता और अन्तर्विरोधों से भरी कदम ताल

किसी नीतिगत दस्तावेज को कैसा होना चाहिए? इस सवाल का जवाब खोजने पर जो न्यूनतम से न्यूनतम जवाब हम पाते हैं वह है कि उसकी भाषा को सुस्पष्ट होना चाहिए उससे अलग-अलग अर्थ निकालने की संभावनाएं जितना संभव हो न्यूनतम होनी चाहिए। दूसरे उसके भीतर मौजूद विचार में अन्तर्विरोध नहीं होना चाहिए। तीसरे उसे कदमताल करते हुए स्थिर बने रहने की बजाए नीतिगत स्तर पर पहले बढ़ाए जा चुके कदमों से आगे बढ़ना चाहिए। चौथे एक लोतांत्रिक समाज में उसे लोकतांत्रिक व प्रगतिगामी मूल्यों को पोषित करने वाला होना चाहिए। मगर हम यह सवाल क्यों पूछ रहे हैं? हम यह सवाल इसलिए पूछ रहे हैं क्योंकि हाल ही में शिक्षा नीति-2019 के मसौदे को सार्वजनिक कर दिया गया है। और यह एक नीतिगत दस्तावेज है जो आज एक मसौदा है तो कल कुछ फेर-बदल के साथ नीति में रूपांतरित होने वाला है और यह नीति हमारे देश की शिक्षा व्यवस्था की दिशा तय करने वाली होगी। तो सवाल उठना लाजमी है कि क्या यह मसौदा उक्त शर्तों को पूरी करता है? थोड़ी सी उहापोह के साथ आप इस नतीजे पर पहुंच जाते हैं- नहीं, मोटे तौर पर यह मसौदा चौथी शर्त को कुछ हद तक पूरी करने के अलावा पहली तीनों शर्तों को पूरी नहीं करता।

मगर हम उक्त बातों की छानबीन करने से पहले यह देखने की कोशिश करते हैं कि इस दस्तावेज में सकारात्मक क्या-क्या है?

- यह मसौदा मानव संसाधन विकास मंत्रालय का नाम बदल कर इसका नाम शिक्षा मंत्रालय करने की सिफारिश करते हुए सबसे साहसिक बात करता है।

- दूसरा महत्वपूर्ण बिन्दु जिसे हम कह सकते हैं वह है इस मसौदे में शिक्षा के अधिकार अधिनियम 2009 यानी आरटीई का दायरा बढ़ाने की बात की गई है। यह मसौदा 3 से 18 वर्ष तक के आयुवर्ग के बच्चों को शिक्षा का अधिकार देने की बात करता है। वर्तमान में इस अधिनियम में मौजूद आरंभिक शिक्षा (जिसमें प्राथमिक से उच्च प्राथमिक तक की शिक्षा आती है) का दायरा बढ़ा कर इसमें पूर्व प्राथमिक से लेकर उच्च माध्यमिक तक की कक्षाओं को शामिल करने की बात करता है। इस तरह पूर्व प्राथमिक शिक्षा के तीन वर्ष (3 से 6 वर्ष आयुवर्ग) व उच्च माध्यमिक तक के चार वर्ष (14 से 18 वर्ष आयुवर्ग) शामिल करने की अनुशंसा करता है।

- शिक्षा में 'पैरा टीचर' की व्यवस्था को पूरी तरह खत्म करने की मंशा रखता है।

- शिक्षक बनने के लिए चार वर्ष के पूर्णकालिक डिग्री कोर्स की अनुशंसा करता है और उसे अलग से शिक्षक प्रशिक्षण संस्थानों में संचालित करने की बजाय नियमित डिग्री कॉलेजों में ही संचालित करने की बात कहता है। साथ ही गुणवत्ताहीन बीड कॉलेजों को बन्द करने की बात करता है।

- पुस्तकालयों को जीवंत बनाने व गतिविधियों को कराने पर ध्यान देने की बात बात करता है। इसमें कहानी सुनाने, रंगमंच, समूह में पठन, लेखन व बच्चों के बनाये चित्रों व लिखी हुई सामग्री का डिसप्ले

करने पर ध्यान देने की बात कही गई है। स्कूल के साथ-साथ सार्वजनिक पुस्तकालयों को विस्तार देने व पढ़ने और संवाद करने की संस्कृति को प्रोत्साहित करने की बात भी कही गई है।

- यह शिक्षा व्यवस्था की दुर्दशा को बिना लाग-लपेट स्वीकार करता है। शिक्षा की सेहत में सुधार लाने के लिए शिक्षा पर खर्च को कुल सार्वजनिक व्यय के वर्तमान 10 प्रतिशत से सन् 2025 तक 20 प्रतिशत तक बढ़ाने की बात करता है।

- निजी स्कूलों के नाम के पहले 'पब्लिक' शब्द हटाने की सिफारिश करता है और कहता है कि इस शब्द का इस्तेमाल करने का हक सिर्फ उन स्कूलों को है जो सरकारी हैं या सरकारी अनुदान से संचालित हैं।

- यह 'एक्ट्राकरीकुलर' जैसे शब्द के चलन को शिक्षा में खत्म करने की बात करता है और कला, संगीत, रंगमंच, दस्तकारी, खेल आदि को शिक्षा की मुख्य पाठ्यचर्या का हिस्सा मानता है। इससे आगे बढ़ कर कला की भूमिका को व्यक्ति में उदार मूल्यों को पनपाने में महत्वपूर्ण मानता है।

- प्राथमिक शिक्षा स्थानीय भाषा या मातृभाषा में हो और संभव हो तो उच्च प्राथमिक शिक्षा भी स्थानीय भाषा में हो। विज्ञान की पढ़ाई स्थानीय व अंग्रेजी दोनों भाषाओं में हो। यह अनुशंसा करता

- भाषाई मुद्दे पर त्रिभाषा फार्मूला अपनाने की अनुशंसा करता है। यानी स्थानीय भाषा और अंग्रेजी के साथ-साथ बच्चे एक और भाषा सीखें।

अब हम लौट कर अपनी बात पर आ सकते हैं कि हम किन आधारों पर इस दस्तावेज की आलोचना कर रहे हैं।

484 पन्नों (हिन्दी रूपान्तरण में 650 पन्ने) का यह दस्तावेज भाषाई स्तर पर बहुत सधा हुआ नहीं है। अपनी भाषा में यह कभी शिक्षा की वर्तमान दुर्दशा पर चिन्ता व्यक्त कर रहा होता है, शिक्षा संस्थानों, शिक्षा व्यवस्था में मौजूद खामियों व ज्ञान के क्षेत्र में शिक्षित युवाओं के पिछड़ जाने पर चिन्ता जाहिर कर रहा होता है तो अगले ही पल यह भारतीय ज्ञान की भूरी-भूरी प्रशंसा (नहीं मालूम प्रशंसा भूरी क्यों होती है, हरी, लाल या नीली क्यों नहीं) करने लगता है। इसकी भाषा में वैज्ञानिक नज़रिए का विकास करने, लोकतांत्रिक मूल्यों का विकास करने, भाईचारे, शांति जैसे मूल्यों को जीवन में आत्मसात करने का आग्रह दिखता है और इन मूल्यों को पंचतंत्र, जातक कथाओं आदि के जरिए सिखाने की उम्मीद पाल लेता है जबकि मूल्यों के बारे में आधुनिक समझ यह बताती है कि उन्हें जीवन में अपनाना सीखना होता है। और यह तब तक संभव नहीं है जब तक कि उन मूल्यों को अपने आस-पास के जीवन में महत्व पाते या जीये जाते हम नहीं देखते। सिर्फ कथा-कहानियों के आधार पर मूल्यों को परीक्षा देने के लिए सीखा जा सकता है जीवन में नहीं उतारा जा सकता एवं मूल्यों का इस तरह सीखा जाना एक विभाजित मानिसिकता ही पैदा करता है जिसमें वे सिर्फ किताबी ज्ञान की संज्ञा पाते हैं और जीवन की व्यावहारिकता उनके बल नहीं चलाई जा सकती इस बात को ही बल मिलता है। इससे बेहतर होता कि उक्त कथाओं को हमारे समृद्ध मौखिक साहित्य के तौर पर देखा जाता और उससे बच्चों की कहानी की भूख शांत करने की बात की जाती। कहानी बचपन की महत्वपूर्ण जरूरत (यों तो साहित्य जीवन की महत्वपूर्ण जरूरत होता है) होती है।

यह दस्तावेज अपने विचारों में अन्तर्विरोधों से भरा है। एक ओर यह बच्चों पर परीक्षा के दबाव को लेकर बेहद चिंतित नज़र आता है मगर उसके उपाय के तौर पर परीक्षा के अधिक मौके देने की बात करता है। इससे भी आगे बढ़ कर यह कक्षा 3, 5 व 8 के स्तर पर राज्य व राष्ट्रीय स्तर पर परीक्षा आयोजित करने की बात करता है। इस परीक्षा में एक से अधिक मौके देने की बात कर यह खुद को उदार साबित करने की कोशिश करता है मगर परीक्षा का यह

केन्द्रीयकृत रूप इसकी उदारता पर पानी फेर देता है। हम सभी जानते हैं कि परीक्षा जितनी केन्द्रीयकृत तरीके से होगी वह अपने आपको उतना अधिक वस्तुनिष्ठ व छात्रों से दूरी बना कर चलेगी (बोर्ड परीक्षाएं इसका उदाहरण हैं)। ऐसे में आकलन बच्चे के सीखने-समझने में मददगार होने की भूमिका से कोसों दूर चला जाता है।

यह शिक्षा में पाठ्यचर्या निर्माण व पाठ्यपुस्तक निर्माण के विकेन्द्रीकरण की बात करता है और बच्चे की मातृभाषा में उसे प्राथमिक शिक्षा जरूरी तौर पर मिले तथा संभव हो तो उच्च प्राथमिक स्तर पर भी मिले ऐसी मीठी उम्मीद जगाता है। यह स्थानीय भाषाओं में पाठ्यपुस्तकें निर्माण करने तक की सिफारिश करता है मगर अगले ही पल प्रधानमंत्री की अध्यक्षता में एक राष्ट्रीयकृत शिक्षा आयोग की सिफारिश करता है जिसमें 50 प्रतिशत मंत्री हों व 50 प्रतिशत अकादमिक क्षेत्र के लोग। सारी शिक्षा व्यवस्था इसी आयोग के अंतर्गत आए ऐसी सिफारिश करता है। हम समझ सकते हैं इस ताकतवर शिक्षा आयोग के सामने कोमल विकेन्द्रीकृत व्यवस्था कितनी टिक पाएगी।

यह दस्तावेज 'पैरा टीचर' की व्यवस्था समाप्त किए जाने की अनुशंसा करता है और अगले ही पल 'रेमेडियल टीचिंग' के लिए स्थानीय 'ट्यूटर' खोजे जाने की अनुशंसा कर देता है। यह यहीं नहीं रुकता बल्कि 'रेमेडियल टीचिंग' का संस्थानीकरण अगले दस सालों तक के लिए कर देना चाहता है। यह बात सीखने में मददगार सतत आकलन की भावना का सत्यानाश कर देती है। सतत आकलन की धारणा में निहित है कि बच्चे अपनी गति से सीखते हुए आगे बढ़ें। उन्हें सीखने में कहां और किस तरह की मदद की जरूरत है इसका पता लगाया जाए और उन्हें वह मदद उपलब्ध करवाई जाए। इस धारणा में पिछड़ गए बच्चे की चुनौतियों को समझने की बात है जबकि रैमेडियल टीचिंग में नहीं सीख पाने का सारा दोषारोपण बच्चे के मथ्थे है और यह समझ निहित है कि उसे सीखने के मामले में एक तरह से बीमार समझ कर उपचार की जरूरत आन पड़ी है। यह पहली पीढ़ी के तथा वर्ग, जाति व लिंग के आधार पर वंचित बच्चों के प्रति अन्याय है। बेहतर होता कि यह देस्तावेज राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 व शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 में निहित सतत व समग्र मूल्यांकन की बात को आगे ले जाता, उसमें मौजूद कक्षा की धारणा की वजह से पैदा हुई विसंगति को दूर करने की बात करता। मगर अफसोस कि यह अपना मौका गंवा देता है। सतत व समग्र मूल्यांकन की धारणा में निहित सीखने की गति की स्वतंत्रता और कक्षा की समयबद्ध धारणा के बीच जो अंन्तर्विरोध है उसे दूर करने का अवसर गंवा दिया गया है। बेहतर होता प्राथमिक व उच्च प्राथमिक कक्षा की कक्षा वार समयबद्ध धारणा को अवधि में तब्दील किया जाता। जहां कक्षा की जकड़न से दूर एक अवधि में (यह अवधि प्राथमिक के लिए साढ़े चार से साढ़े पांच वर्ष व उच्च प्राथमिक तक के लिए साढ़े सात से साढ़े आठ वर्ष हो सकती है और किन्हीं अपवादों में कुछ और ज्यादा या कम हो सकती है) बच्चों को अपनी गति से प्राथमिक व उच्च प्राथमिक स्तर पूरा करने की छूट होती।

यह दस्तावेज शिक्षा में मौजूद श्रेणीकरण को बढ़ावा देता है और उसे मान्यता देता है। यह कस्तूरबा गांधी विद्यालयों के 12वीं तक हो जाने की बात करता है। हम सब जानते हैं कस्तूरबा गांधी विद्यालय एक तात्कालिक जरूरत से पैदा हुआ ढांचा है उसे मुख्य शिक्षा में संस्थागत रूप में मान्यता देना अपने आप में श्रेणीकरण या विभेद को स्थापित करना है। यह यहीं नहीं रुकता उससे आगे बढ़ कर निजी स्कूलों को अपनी फीस तय करने की छूट देता है हालांकि यह कहता है कि वह फीस मनमानी नहीं हो सकती मगर फिर भी फीस तय करने की छूट देता है। यह शिक्षा में निजीकरण को स्वीकार करता है और अनकहे उसमें मौजूद विभेद (केन्द्रीय विद्यालय, नवोदय विद्यालय, कस्तूरबा गांधी विद्यालय, राज्य के सरकारी विद्यालय, मंहगे निजी स्कूल, सस्ते निजी स्कूल इत्यादि) को स्थापित व मजबूत करने का काम करता है। इस तरह 'कॉमन स्कूल' सिस्टम में मौजूद पड़ौस के स्कूल की धारणा को स्थापित करने का मौका गंवा देता है। इसका नतीजा हम आने वाले वर्षों में शिक्षा में निजीकरण और बढ़ने के रूप में देखेंगे।

यह दस्तावेज यशपाल समिति, शिक्षा नीति 1968, 1986/1992 (संशोधित), राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 का जिक्र फौरी तौर पर करता है। यही वजह है कि यह अपनी जगह कदमताल करते हुए कभी-कभी एक कदम पीछे रख देने को विवश होता है। अगर उक्त दस्तावेजों व शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 में उठाए गए कदमों को गंभीरता से लिया जाता तो यह निश्चित उस दिशा में आगे बढ़ने की कोशिश करता। इसे गौर से पढ़ें तो यह उदारता की शब्दावली का उपयोग निजीकरण के रास्ते खोलने के लिए करता है न कि लोकतांत्रिक मूल्यों के संरक्षरण के लिए। कुछ जगह यह अपनी भाषा का इस्तेमाल स्वच्छ भारत अभियान के प्रचारक के तौर पर करता है। स्वच्छता अपने आप में एक मूल्य हो सकता है किन्तु उसे डस्टबिन के इस्तेमाल सीखने व शौचालय का उपयोग करने तक सीमित कर देने से उस मूल्य का अपने आप में क्षरण हो जाता है।

उच्च शिक्षा में तीन प्रकार के सस्थान बनाने की बात करता है। पहला ऐसे विश्वविद्यालय जो शोध पर केन्द्रित होंगे मगर वहां शिक्षण भी होगा, दूसरे ऐसे विश्वविद्यालय जो शिक्षण केन्द्रित होंगे मगर वहां शोध भी होगा, तीसरे ऐसे कॉलेज जो केवल शिक्षण केन्द्रित होंगे। इसके साथ ही विदेशी विश्वविद्यालयों को भारत में आने का रास्ता साफ करता है। यह उच्च शिक्षा में निजीकरण के दूसरे दौर की शुरुआत है। जो हश्र हम स्कूली शिक्षा का देख चुके हैं अब हमें उच्च शिक्षा का देखने के लिए तैयार रहना चाहिए।

इस दस्तावेज को लगता है कि अंतरिक्ष, खगोल, चिकित्सा, आदि संबंधी सारा ज्ञान संस्कृत में पहले से मौजूद है। तथा फिर से नालंदा व तक्षशिला स्थापित किए जाने की जरूरत है। यह इसका अतीत मोह है जिससे यह उबर नहीं पाता और यही इसके लिए सबसे बड़ा अन्तर्विरोध रचता है। यह लौट-लौट कर अतीत की ओर देखता है उसी में अपना प्रश्रय ढूंढ़ता है।

यह 2025 तक शिक्षा पर खर्च बढ़ाने की बात करते हुए इसे सार्वजनिक व्यय के 10 प्रतिशत से 20 प्रतिशत तक ले जाने की बात करता है मगर उसकी जिम्मेदारी केवल सरकार पर न डाल कर निजीभागीदारी का अंश भी उसमें शामिल करने की बात करता है।

पहली नजर में पढ़ने पर इस दस्तावेज की उदारता की शब्दावली में लिपटी भाषा से हम कुछ उम्मीद पाल लेते हैं मगर गौर से पढ़ने पर इसका मुखौटा उतर जाता है। यह दस्तावेज बाजार की उदार शब्दावली व प्रतिगामी सोच का मिलाजुला नमूना है। ◆

प्रमोद